प्रतिक्रमण : एक विहंगम दृष्टि

डॉ. बिमला भण्डारी

प्रतिक्रमण का साधक संवर एवं निर्जरापूर्वक आत्मशोधन करता है। यदि जम्बूद्वीप के समस्त पर्वत सोने के बन जायें और बालू रेत स्वर्ण बन जाये और कोई इन्हें सात क्षेत्रों में दान दे तो भी उसकी उतनी आत्मशुद्धि नहीं होती जितनी प्रतिक्रमण से होती है। यही संदेश डॉ. भण्डारी के प्रस्तुत लेख से प्राप्त होता है। *-सम्पादक*

भारतीय दार्शनिक परम्परा में जैन दर्शन अपने व्यावहारिक पक्ष के लिए आज सम्पूर्ण विश्व में एक अनूठा गौरवपूर्ण स्थान बनाए हुए है। भगवान् महावीर ने पहले अपने जीवन में केवलज्ञान या सम्यक् सम्बोधि जैसे दुर्लभ लक्ष्य को प्राप्त किया, स्वयं दुःखमुक्त बने तथा जन-जन में दुःखमुक्ति हेतु उपदेश किया। उन्होंने साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकारूप चतुर्विध संघ की स्थापना की। उनके द्वारा निरूपित अर्थरूप वाणी के आधार पर गणधरों एवं आचार्यों ने आगमों की रचना की।

जैनागमों में आवश्यकसूत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आवश्यक सूत्र जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है हमारे आवश्यक कार्यों से संबंधित है। जीवन में कुछ कृत्य ऐसे होते हैं जो हमारे आत्म-विकास, आत्म-स्वातन्त्र्य और आत्म-समृद्धि के आधार-स्तंभ होते हैं। भगवान् ने ऐसे कृत्यों को आवश्यक कृत्यों की संज्ञा दी है। अनुयोगद्वार चूर्णि में आवश्यक को परिभाषित करते हुए लिखा है- जो गुणशून्य आत्मा को प्रशस्त भावों में आवासित करता है, वह आवासक या आवश्यक है। अनुयोगद्वारसूत्र की मल्लधारीकृत टीका में लिखा है कि जो समस्त गुणों का निवास स्थान है वह आवासक या आवश्यक है। आवश्यक जैन साधना का प्राण है। यदि व्यक्ति दृढ़ मनोयोग के साथ आवश्यक कृत्यों को सम्पादित करता है तो वह अनिवार्यतः आत्मश्रेय को उपलब्ध होता है।

मानवीय पुरुषार्थ की जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। हम जैसे भी हैं, उसका कारण हम स्वयं ही हैं। प्रत्येक व्यक्ति कर्म से आबद्ध है। कर्मों के वशीभूत जीवात्मा की अनंत काल तक यात्रा चलती रहती है। इसी क्रम में मनुष्य अनेक भूलें कर बैठता है, अंग्रेजी लोकोक्ति है- "Man is a bundle of mistakes" आदमी गलतियों का पुलिंदा है। हर व्यक्ति अपराध करता है। हर व्यक्ति भूल करता है। एक अंग्रेजी विद्वान् ने कहा है- "To forget is humane but to forgive is divine" भूलना या अपराध करना मानव की आदत है, परन्तु अपराधी को क्षमा कर देना ईश्वरीय गुण है। इस ईश्वरीय गुण को प्रकट करने के लिए ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभात तथा संध्याकाल में मानव के लिए प्रतिक्रमण आवश्यक क्रिया है।

वस्तुतः अतिक्रमण का ही प्रतिक्रमण किया जाता है। आत्मा ने भ्रान्ति के क्षणों में स्वभाव (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) से हटकर विभाव (राग-द्वेषादि) में रमण करके जो अतिक्रमण किया है, उससे पुनः लौटना अर्थात् स्वभाव में रमण करना ही प्रतिक्रमण कहलाता है।

जाग्रत तन और जाग्रत मन से प्रतिक्रमण करने वाला व्यक्ति संयम की साधना द्वारा आस्रव का निरोध करके संवर की निष्पत्ति करता है अर्थात् अतीत में लगे दोषों का पश्चात्ताप करता है। वह संवर के माध्यम से वर्तमान काल में दोषों को नहीं लगने देता और प्रायश्चित्त तप की साधना द्वारा निर्जरा की निष्पत्ति करके भविष्यकाल में लगने वाले दोषों को रोकने के लिए प्रत्याख्यान आदि द्वारा पूर्व संचित कर्मों का रेचन भी कर लेता है।

जैन आगम में प्रतिक्रमण को आवश्यक कहा गया है। आवश्यक का अर्थ है ''*अवश्यं करणीयत्वा-आवश्यकम्*'' जो अवश्य किया जाए वह आवश्यक कहलाता है। यह साधु तथा श्रावक दोनों की आवश्यक क्रिया है। साधु सर्वविरति कहलाता है और श्रावक देशविरति। इसलिए साधु के लिए तो प्रतिदिन प्रातः सायं दोनों समय प्रतिक्रमण करना अनिवार्य है, परन्तु श्रावक को भी प्रतिदिन उभयकाल प्रतिक्रमण करना चाहिए। इस संबंध में प्रश्न यह उठता है कि जिसने श्रावक के बारह व्रत ग्रहण किये हों उसे तो प्रतिक्रमण करना योग्य है, परन्तु जिसने व्रत ग्रहण नहीं किए हों उससे अतिचार असंभव है, इसलिए अव्रती को प्रतिक्रमण करने की क्या आवश्यकता है? प्राज्ञ पुरुषों ने इसका सुन्दर समाधान करते हुए कहा है कि व्रती एवं अव्रती दोनों को प्रतिक्रमण करना चाहिए, क्योंकि मात्र अतिचारों की शुद्धि के लिए ही प्रतिक्रमण हो ऐसा आवश्यक नहीं है। वंदित्तु सूत्र की गाथा ४८ ''*पडिसिद्धाणं करणे, किच्चाणमकरणे अ पडिक्कमणं*'' में जिन कारणों से (जिनेश्वर के निषिद्ध कार्य करने से, उपदिष्ट या करणीय कार्य न करने से, जिनवचन में अश्रद्धा करने से तथा असत्यप्ररूपण से अर्थात् जिनेश्वरों के कथन, उनके द्वारा प्रतिपादित तत्त्वज्ञान के विरुद्ध विचार प्रतिपादन करने से) प्रतिक्रमण किया जाता है उनमें मिथ्यादृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरति तथा सर्वविरित सब आ जाते हैं। अतः चाहे अविरति हो, चाहे विरति हो सबके लिए प्रतिक्रमण आवश्यक है।

वस्तुतः प्रतिक्रमण ऐसी औषधि के समान है, जिसका प्रतिदिन सेवन करने से विद्यमान रोग (कषाय) शांत हो जाते हैं, रोग नहीं होने पर उस औषधि के सेवन से भविष्य में रोग नहीं होते अर्थात् प्रतिक्रमण के द्वारा दोषों का निवारण हो जाता है और दोष नहीं लगे हों तो प्रतिक्रमण भाव और चारित्र की विशेष शुद्धि करता है।

एक विद्वान् ने नर से नारायण बनने की क्रिया के रूप में महत्त्व देते हुए प्रतिक्रमण को ही ध्यान का पहला चरण बताया है। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रतिक्रमण से ही जीवन में सच्ची सामायिक, सच्ची समता और सच्ची समाधि आती है। समता जीवन का पर्याय बनता है, व्यक्ति स्वभाव के आलोक में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवृत्ति करता है, फलस्वरूप प्रवृत्ति भी उसे निवृत्ति की तरफ अग्रसर करती है।

प्रतिक्रमण का महत्त्व बताते हुए कहा गया है-

जंबुदीवे जे हुंति पव्वया, ते चेव हुंति हेमस्स।
दिज्जति सत्तक्खिते न छुट्टए दिवसपच्छित्तं।।
जंबुद्दीवे जा हुज्ज बालुआ, ताउ हुंति रयणाई।
दिज्जति सत्त खित्ते, न छुट्टए दिवसपच्छित्तं।।

अर्थात् जंबूद्वीप में जो मेरु आदि पर्वत हैं, वे सब सोने के बन जायें और जंबूद्वीप में जो बालू है, वह सब रत्नमय बन जाये, वह सोना और रत्न यदि सात क्षेत्र में दान दे देवें, तो भी जीव इतना शुद्ध नहीं बनता, जितना भावपूर्वक आलोचना करके प्रायश्चित्त वहन कर शुद्ध बनता है।

आलोयणपरिणओ सम्मं संपट्ठिओ गुरुसगासे।
जइ अंतरा कालं करेइ आराहओ तहवि।।

अर्थात् शुद्ध आलोचना करने के लिए गुरु के पास प्रस्थान किया हो और प्रायश्चित्त लेने के पहले ही वह व्यक्ति बीच में मृत्यु को प्राप्त हो जाए, तो भी वह आराधक बनता है। अशुद्ध आलोचना करने वाला विराधक बनता है।

लज्जा गारवेण बहुस्सुयमयेण वावि दुच्चरियं।
जे न कहंति गुरुणं, न हु ते आराहगा हुंति।।

अर्थात् लज्जा से अथवा मैं इतना धर्मी हूँ, अथवा मैं बड़ा हूँ, पाप कहने से मेरी लघुता होगी, इस प्रकार गारव से तथा पांडित्य का नाश न हो जाए, इस भय से जो जीव गुरु के पास शुद्ध आलोचना नहीं करते, वे वास्तव में आराधक नहीं बनते।

-विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र-विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org